Toppersnotes®
Unleash the topper in you

UGC-NET

दर्शनशास्त्र

NATIONAL TESTING AGENCY (NTA)

पेपर – 2 || भाग – 3

समकालीन भारतीय दर्शन एवं अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र

SIERRA INNOVATIONS

UGC NET - दर्शनशास्त्र

S. No.	Content	Page No.
1.	इकाई-V समकालीन भारतीय दर्शन	1-115
	• विवेकानन्द	1
	• श्री अरविन्द	11
	• इकबाल	22
	• टैगोर	35
	• के सी भट्टाचार्य	38
	• राधाकृष्णन	44
	• जे.कृष्णमूर्ति	53
	• गांधी	58
	• अम्बेडकर	61
	• डीडी उपाध्याय	66
	• नारायण गुरु	90
	• जोतिबा फूले	97
	• एम एन राय	108
	• मौलाना आजाद	112
2.	इकाई-X अनुप्रयुक्त दर्शन शास्त्र	116-155
	• अनुप्रयुक्त दर्शन शास्त्र क्या है ?	116
	• प्रौद्योगिकी एवं व्यावसायिक नीतिशास्त्र	119
	• पर्यावरणीय नीतिशास्त्र एवं आयुर्विज्ञान का नीतिशास्त्र	127

	● मीडिया नीतिशास्त्र	137
	● विधिक नीतिशास्त्र	141
	● दार्शनिक परामर्शन	154

इकाई-V समकालीन भारतीय दर्शन

स्वामी विवेकानंद

स्वामी विवेकानंद का जीवन परिचय

स्वामी विवेकानंद का जन्म कलकत्ता के एक बंगाली कायस्थ परिवार में 12 जनवरी, 1863 को हुआ था। इनका वास्तविक नाम नरेंद्र नाथ दत्त था। इनके पिता श्री विश्वनाथ दत्त कलकत्ते के उच्च न्यायालय में एटर्नी (वकील) थे। वे बड़े बुद्धिमान, ज्ञानी, उदार, परोपकारी एवं गरीबों की रक्षा करने वाले थे। स्वामी जी की माँ श्रीमती भुवनेश्वर देवी भी बड़ी बुद्धिमती, गुणवती, धर्मपरायण एवं परोपकारी थीं। स्वामी जी पर इनका अमिट प्रभाव पड़ा। ये बचपन से ही पूजा-पाठ में रुचि लेते थे और ध्यानमग्न हो जाते थे। इनकी इसी प्रवृत्ति ने आगे चलकर इन्हें नरेंद्रनाथ से स्वामी विवेकानंद बना दिया।

नरेंद्रनाथ की शिक्षा का आरंभ इनके अपने घर पर ही हुआ। ये बड़े कुशाग्र बुद्धि और चंचल स्वभाव के बालक थे। सात वर्ष की आयु तक इन्होंने पूरा व्याकरण रट डाला था। सात वर्ष की अवस्था में इन्हें मेट्रोपोलिटन कॉलिज में भर्ती किया गया। इस विद्यालय में इन्होंने पढ़ने-लिखने के साथ-साथ खेल-कूद, व्यायाम, संगीत और नाटक में रुचि ली और इन सभी क्षेत्रों में ये आगे रहे। 16 वर्ष की आयु में इन्होंने मैट्रीकुलेशन (हाईस्कूल) की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। इसके बाद इन्होंने प्रेसीडेंसी कॉलेज में प्रवेश लिया और उसके बाद जनरल एसेम्बलीज इन्स्टीट्यूशन में पढ़ने लगे। इस समय इन्होंने कॉलेज के पाठ्य विषयों के अध्ययन के साथ-साथ साहित्य, दर्शन और धर्म का भी अध्ययन किया। इस क्षेत्र में इन्हें अपने माता-पिता और अध्यापकों से बड़ा सहयोग मिला। अध्ययनशील नरेंद्रनाथ दत्त का जीवन बड़ा संयमी था; ये ब्रह्मचर्य का पालन करते थे और प्रार्थना, उपासना और ध्यान में मग्न रहते थे। ज्ञान के प्रकाश और आध्यात्मिक तेज से गौर वर्ण के सुंदर युवक का चेहरा और अधिक प्रदीप्त हो उठा था।

नवम्बर 1881 में इन्हें कलकत्ता में ही स्थित दक्षिणेश्वर के मंदिर में जाने और श्री रामकृष्ण परमहंस के दर्शन करने का सौभाग्य मिला। परमहंस इनकी आभा से प्रभावित हुए, परंतु एफ.ए. (इंटर) की परीक्षा की तैयारी में लग जाने के कारण नरेंद्र नाथ बहुत दिनों तक उनके पास न जा पाए। नरेंद्र नाथ ने एफ.ए. पास कर बी.ए. में प्रवेश लिया। इसी बीच इन्होंने परमहंस का सत्संग किया। इस सत्संग का यह प्रभाव हुआ कि नरेंद्र नाथ गृहस्थ जीवन में नहीं बँधे। 1884 में इन्होंने बी.ए. पास किया। उसी वर्ष इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। यूँ तो इनके पिता बहुत पैसा कमाते थे परंतु

ये खर्च भी बहुत उदारता से करते थे। परिणामतः उनके पास बचता कुछ नहीं था। जब उनका स्वर्गवास हुआ तो घर में पैसा नहीं था। अब नरेंद्रनाथ को अपनी माँ और बहिनों के भरण-पोषण के लिए आर्थिक क्षेत्र में कार्य करना पड़ा। संपन्न परिवार में जन्मे और पले इस युवक को विपन्नता का सामना करना पड़ा। इस समय इन्होंने अनुभव किया कि निर्धनता दुख की जननी है। 1886 में श्री परमहंस का भी महाप्रस्थान हो गया। महाप्रस्थान करने से तीन दिन पूर्व परमहंस ने नरेंद्रनाथ को अपना उत्तराधिकार देते हुए कहा था-'आज अपना सब कुछ तुम्हें देकर मैं रंक बन गया हूँ। मैंने योग द्वारा जिस शक्ति को तुम्हारे अंदर प्रविष्ट किया है, उससे तुम अपने जीवन में महान कार्य करोगे। अपने इस कार्य को पूर्ण करने के बाद ही तुम वहाँ जाओगे जहाँ से आये हो।'

गुरु के महाप्रस्थान के बाद ये उनकी शिक्षाओं के प्रचार एवं प्रसार कार्य में लग गए। पहले वर्ष इनका कार्य क्षेत्र कलकत्ता ही रहा। इसके बाद 1888 में ये परिव्राजक के रूप में भारत भ्रमण के लिए निकल पड़े। ये काशी, अयोध्या, लखनऊ, आगरा, मथुरा, वृंदावन और हाथरस होते हुए हिमालय पहुंचे। इस यात्रा में ये प्रायः पैदल ही चले और परमहंस रामकृष्ण की शिक्षाओं का प्रचार एवं प्रसार करते रहे। 1891 में इन्होंने राजस्थान की यात्रा की और 1892 में दक्षिण भारत की यात्रा की। इस यात्रा में इन्होंने भारत की नंगी तस्वीर देखी और उसकी आत्मिक एकता की अनुभूति की।

दक्षिण भारत की यात्रा के अंतिम चरण में ये कन्याकुमारी पहुंचे। यहाँ के मंदिर में इन्होंने देवी के दर्शन किए और फिर समुद्र में कूदकर तैरते हुए एक पास की चट्टान पर जा पहुँचे और वहाँ तपस्या में समाधिस्थ हो गए। यहाँ इन्हें एक दिव्य अनुभूति हुई। यहाँ इन्होंने देश सेवा, दीन-हीन, दलित और अपेक्षित भारतीय जनता के कल्याण का व्रत लिया। यहाँ से ये मद्रास पहुँचे। मद्रास में इन्होंने कई स्थानों पर वेदांत पर विद्वतापूर्ण व्याख्यान दिए। यहाँ के लोग इनसे बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने अमेरिका में होने वाले विश्व धर्म सम्मेलन में भेजने के लिए मार्ग व्यय एकत्रित किया। उनके आग्रह पर इन्होंने अमेरिका जाना स्वीकार किया। अमेरिका जाने से पहले इन्होंने अपना नाम विवेकानंद रखा और सितंबर, 1893 में इन्होंने इस सम्मेलन में भाग लिया। यहाँ इन्होंने संसार को भारतीय धर्म और दर्शन से परिचित कराया। विश्व के विद्वान इनकी विद्वता से प्रभावित हुए। अमेरिकी जनसमूह इनके पीछे दौड़ने लगा। अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर ये तीन वर्ष अमेरिका रुके और वहाँ वेदांत का प्रचार किया। इस बीच इनकी अनेक पुस्तकों का प्रकाशन भी हुआ। 1897 में ये इंग्लैंड गए और अनेक स्थानों पर भाषण दिए और वेदांत का प्रचार किया। इंग्लैंड से इटली, स्विट्जरलैंड, जर्मनी और फ्रांस गए और इन देशों में वेदांत पर व्याख्यान दिए। यहाँ से ये पुनः इंग्लैंड गए और वहाँ वेदांत का प्रचार किया। तब ये भारत लौटे। स्वामी विवेकानंद का मत था कि मनुष्य को सदैव दीनहीनों की सेवा करनी चाहिए।

इंग्लैंड से भारत लौटकर इन्होंने 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना की, जिसका उद्देश्य न केवल वेदांत का प्रचार था, अपितु दीन-हीनों की सेवा के लिए शिक्षा संस्थाएँ और चिकित्सालय खोलना भी था। स्वामी जी चाहते थे कि इनके अनुयायी गाँव-गाँव जाकर शिक्षा का प्रचार करें अज्ञान के अंधकार को दूर करें। इसी समय इन्होंने कलकत्ता स्थित बेल्लूर में एक मठ का निर्माण कराया जो 1899 के आरंभ से रामकृष्ण के अनुयायियों का स्थायी केंद्र बन गया। थोड़े ही दिनों बाद इन्होंने हिमालय में अल्मोड़े से 75 किमी. की दूरी पर अद्वैत आश्रम के नाम से एक दूसरे मठ का निर्माण कराया।

इन कार्यों से निवृत्त होकर स्वामी जी 1899 में पुनः अमेरिका गए। ये वहाँ लगभग एक वर्ष तक रहे और राज योग तथा साधन की शिक्षा देते रहे। 1900 में स्वामी जी अमेरिका से फ्रांस पहुँचे। यहाँ इन्होंने 'पेरिस विश्व धर्म इतिहास सम्मेलन' में भाग लिया। फ्रांस से ये इटली और ग्रीस होते हुए उसी वर्ष भारत लौट आए। अब ये कुछ अस्वस्थ रहने लगे। परंतु अस्वस्थ रहते हुए भी ये धर्म प्रचार, समाज सेवा और जन जागरण के कार्यों में लगे रहे। 1887 से 1901 के बीच स्वामी जी ने अनेक ग्रंथों की रचना भी की। इनमें ज्ञान योग, कर्म योग, भक्ति योग, राज योग, प्रेम योग, धर्म विज्ञान, हिंदू धर्म, व्यावहारिक जीवन में वेदांत, प्राच्य और पाश्चात्य, मेरे गुरुदेव, धर्म रहस्य, हमारा भारत, वर्तमान भारत और शिक्षा मुख्य हैं। अब इनके पूरे साहित्य और मुख्य भाषणों को 'विवेकानंद साहित्य' के नाम से दस खंडों में प्रकाशित किया गया है। परंतु विधि का विधान, इस युग पुरुष ने 39 वर्ष की अल्प आयु में ही 4 जुलाई, 1902 को निर्वाण प्राप्त किया।

स्वामी विवेकानंद का दार्शनिक चिंतन

स्वामी विवेकानंद श्री रामकृष्ण परमहंस के शिष्य थे। श्री परमहंस ने इस सत्य की अनुभूति की थी कि परमात्मा आत्मा में है और आत्मा परमात्मा में है और उन्होंने इस सत्य की अनुभूति अपने शिष्य विवेकानंद को भी कराई थी। इसके साथ-साथ श्री विवेकानंद ने वेदों और उपनिषदों का गूढ अध्ययन किया था और उनके द्वारा प्रतिपादित सत्यों की जीवन में अनुभूति की थी। स्वामी जी के विचार केवल तार्किक ही नहीं हैं, अपितु अनुभव सिद्ध हैं।

वैदिक धर्म और दर्शन भिन्नताओं का योग है। स्वामी विवेकानंद वेदांत दर्शन को मानते थे। वेदांत के भी तीन रूप हैं-द्वैत, विशिष्टाद्वैत और अद्वैत। स्वामी जी अद्वैत के समर्थक थे। इनके अनुसार द्वैत, विशिष्टाद्वैत और अद्वैत, इनमें कोई अंतर नहीं है; ये तीनों वेदांत दर्शन के तीन सोपान हैं, जिनका अंतिम लक्ष्य अद्वैत की अनुभूति ही है। इतना ही नहीं, अपितु स्वामी जी तो विश्व के सभी धर्मों और दर्शनों को अंत में अद्वैत की ओर झुका बताते थे।

धर्म और दर्शन के प्रति स्वामी जी का दृष्टिकोण बड़ा वैज्ञानिक था। इन्होंने स्पष्ट किया कि कला, विज्ञान और धर्म एक ही परम सत्य को व्यक्त करने के तीन विभिन्न साधन हैं। एक स्थान पर इन्होंने कहा है-'जब विज्ञान का शिक्षक यह कहता है कि समस्त वस्तुएँ एक ही शक्ति की द्योतक हैं तो क्या आपको ईश्वर की याद नहीं आती, जिसके विषय में आपने उपनिषदों में पढ़ा है।' और यही तो अद्वैत वेदांत कहता है। अद्वैत वेदांत को ये सार्वभौमिक विज्ञान धर्म कहते थे। इन्होंने वेदांत को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में देखने-समझने और उसकी वैज्ञानिक व्याख्या करने का स्तुत्य प्रयास किया है। यही उनके अद्वैत वेदांत का नयापन है और इसी आधार पर इनके दार्शनिक चिंतन को नव्य वेदांत कहा जाता है। यहाँ स्वामी जी के नव्य वेदांत की तत्व मीमांसा, ज्ञान एवं तर्क मीमांसा और | मूल्य एवं आचार मीमांसा प्रस्तुत है।

विवेकानंद के नव्य वेदांत की तत्व मीमांसा

अद्वैत दर्शन के अनुसार 'ब्रह्म' इस सृष्टि का आदि तत्व है और वही इस ब्रह्माण्ड की रचना का कर्ता और उपादान कारण है। वेदांतियों का तर्क है कि जिस प्रकार मकड़ी अपने जाले का निर्माण स्वयं करती है और जाले बनाने का पदार्थ अपने अंदर से निकालती है, ठीक उसी प्रकार ब्रह्म इस ब्रह्माण्ड का निर्माण स्वयं करता है और इसका उपादान कारण भी वह स्वयं ही है। स्वामी विवेकानंद इस सत्य को स्वीकार करते थे। इस सिद्धांत के अनुसार संसार के सभी स्थूल पदार्थ और सूक्ष्म आत्माएँ ब्रह्म अर्थात् परमात्मा के अंश हैं। दूसरे शब्दों में यह सारा संसार ब्रह्ममय है। प्रश्न उठता है कि इस ब्रह्म का स्वरूप क्या है। अद्वैतवादियों के अनुसार ब्रह्म एक ऐसी शक्ति है जिसका कोई स्वरूप नहीं है, यह निराकार, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक और सर्वज्ञ है। माया के योग से यह ब्रह्म साकार ब्रह्म (ईश्वर) का रूप धारण करता है। यह स्थूल इंद्रियग्राह जगत और उसके समस्त पदार्थ भी उसके साकार रूप हैं।

आत्मा के संबंध में स्वामी जी अद्वैतवादियों के विचार से सहमत हैं। इनके अनुसार सभी आत्माएँ परमात्मा का अंश है और परमात्मा की भाँति वे भी अनादि और अनंत हैं, अत: उनके जन्म और मरण का प्रश्न नहीं उठता। अद्वैत के अनुसार संसार के अन्य पदार्थ भी ब्रह्म अर्थात् के ही अंश हैं परंतु आत्मा और अन्य पदार्थों में अंतर इतना है कि आत्मा सर्वव्यापी और सर्वज्ञाता है औरा उसमें अपने वास्तविक स्वरूप परमात्मा को समझने और उसे प्राप्त करने का गुण है जबकि अन्य पदार्थों मे यह गुण नहीं है। इस सिद्धांत के अनुसार जब तक आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप परमात्मा को नहीं पहचानती और उसे प्राप्त नहीं कर लेती तब तक वह एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश करती रहती है और जब वह अपने वास्तविक स्वरूप को समझ लेती है और उसे प्राप्त हो जाती है तब वह ऐहिक जीवन से मुक्त हो जाती है। इसी को स्वामी जी मुक्ति कहते थे। मनुष्य को विवेकानंद शरीर, मन और आत्मा का योग मानते थे और यह मानते थे कि मनुष्य जीवन के दो पक्ष हैं-एक भौतिक और दूसरा आध्यात्मिक। ये मनुष्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों पक्षों के विकास पर बल देते थे। इनका कथन था कि जब तक मनुष्य शारीरिक दुर्बलता, अज्ञानता और राजनैतिक दासता से मुक्त नहीं होता तब तक वह आत्मिक मुक्तता की ओर नहीं बढ़ सकता। मनुष्य के विकास के संबंध में विवेकानंद का दृष्टिकोण बड़ा व्यापक था। ये मनुष्य के आध्यात्मिक विकास के लिए भारतीय ज्ञान एवं क्रियाओं को आवश्यक मानते थे ओर उसके भौतिक एवं आर्थिक विकास के लिए पाश्चात्य ज्ञान, विज्ञान एवं तकनीकी को आवश्यक मानते थे। आज तो ज्ञान किसी देश की सीमा में सीमित नहीं है, आज तो ज्ञान के क्षेत्र में भूमंडलीकरण हो गया है।

विवेकानंद के नव्य वेदांत की ज्ञान एवं तर्क मीमांसा

स्वामी जी ने ज्ञान को दो भागों में बाँटा है-भौतिक ज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान। भौतिक ज्ञान के अंतर्गत इन्होंने वस्तुजगत (उसकी समस्त वस्तुओं और क्रियाओं) के ज्ञान को रखा है और आध्यात्मिक ज्ञान के अंतर्गत सूक्ष्म जगत (परमात्मा, आत्मा और जीवात्माओं) के ज्ञान और सूक्ष्म जगत के ज्ञान को प्राप्त करने के साधन मार्गों (ज्ञान योग, कर्म योग, भक्ति योग और राज योग) के ज्ञान को रखा है। वेदांत के प्रतिपादक शंकर के अनुसार वस्तु जगत का ज्ञान असत्य ज्ञान है और सूक्ष्म जगत का ज्ञान सत्य ज्ञान है, परंतु विवेकानंद वस्तु जगत और सूक्ष्म जगत दोनों के

ज्ञान को सत्य मानते थे। इनका तर्क है कि यह वस्तु जगत ब्रह्म द्वारा ब्रह्म से निर्मित है और ब्रह्म सत्य है, तब यह जगत भी सत्य होना चाहिए। सत्य से असत्य की उत्पत्ति कैसे हो सकती है! अतः इसका ज्ञान भी सत्य ज्ञान की कोटि में आता है। जहाँ तक ज्ञान प्राप्ति के साधनों की बात है, इस संदर्भ में भी स्वामी जी के विचार स्पष्ट हैं। इनके अनुसार वस्तु जगत का ज्ञान प्रत्यक्ष विधि और प्रयोग विधि से होता है और सूक्ष्म जगत का ज्ञान सत्संग, स्वाध्याय और योग द्वारा होता है। योग को तो ये किसी भी प्रकार के ज्ञान (वस्तु जगत अथवा सूक्ष्म जगत के ज्ञान) प्राप्त करने की सर्वोत्तम विधि मानते थे।

विवेकानंद के नव्य वेदांत की मूल्य एवं आचार मीमांसा

स्वामी जी मनुष्य को आत्माधारी मानते थे और शंकर की इस बात से सहमत थे कि मनुष्य जीवन का अंतिम उद्देश्य मुक्ति है, इस संसार के आवागमन से छुटकारा प्राप्त करना है, आत्मा का परमात्मा में लीन करना है; परंतु ये इस वस्तु जगत और उसमें मानव जीवन को भी सत्य मानते थे इसलिए वस्तु जगत में उसे शारीरिक दुर्बलता, मानसिक दासता, आर्थिक अभाव और हीनता की भावना से मुक्त कराने पर बल देते थे। इन दोनों प्रकार की मुक्ति के लिए इन्होंने संपूर्ण मानव जाति को अध्ययनशील, विवेकशील एवं कर्मशील होने का उपदेश दिया है और सत्संग, भक्ति एवं योग (ज्ञान योग, कर्म योग, भक्ति योग और राज योग) साधना का उपदेश दिया है।

मनुष्य के आचार-विचार के संबंध में स्वामी जी का स्पष्ट मत है कि मनुष्यों को सदैव सत्य का पालन करना चाहिए और दीन-हीनों की सेवा करनी चाहिए। सत्य और सेवा को ये जीवन का आधारभूत मूल्य मानते थे। इनकी अपनी दृष्टि से सत्य वह है जिससे व्यष्टि और समष्टि दोनों का हित (भौतिक हित एवं आध्यात्मिक हित) होता है और असत्य वह है जिससे व्यष्टि अथवा समष्टि किसी का भी अहित (भौतिक अथवा आध्यात्मिक) होता है। स्वामी जी मनुष्य को ईश्वर का मंदिर मानव सेवा को सबसे बड़ा धर्म मानते थे। इनकी दृष्टि से मनुष्य को मन, वचन और कर्म से शुद्ध होना चाहिए, अपनी जीविका ईमानदारी से कमानी चाहिए, दीन-हीनों की सेवा करनी चाहिए और इस प्रकार अपने को शुद्ध एवं निर्मल बनाकर योग साधना के योग्य बनाना चाहिए और फिर किसी भी योग मार्ग (ज्ञान, कर्म, भक्ति अथवा राज) द्वारा आत्मानुभूति करनी चाहिए। योग साधना के लिए इन्होंने सात सोपानों-शम-दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा, समाधान, मुमुक्षत्व और नित्यानित्य विवेक के मार्ग का समर्थन किया है। स्वामी विवेकानंद श्री रामकृष्ण परमहंस के शिष्य थे।

स्वामी विवेकानंद का शैक्षिक चिंतन

स्वामी विवेकानंद भारतीय दर्शन के पंडित और अद्वैत वेदांत के पोषक थे। ये वेदांत को व्यावहारिक रूप देने के लिए प्रसिद्ध हैं। इनके दार्शनिक विचार सैद्धांतिक रूप में इनके द्वारा विरचित पुस्तकों में पढ़े जा सकते हैं और इनका व्यावहारिक रूप रामकृष्ण मिशन के जन कल्याणकारी कार्यों में देखा जा सकता है। स्वामी जी अपने देशवासियों की अज्ञानता और निर्धनता, इन दो से बहुत चिंतित थे और इन्हें दूर करने के लिए इन्होंने शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया था। ये अपने और अपने साथियों को केवल वेदांत के प्रचार में नहीं लगाए रहे, इन्होंने जन शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार में भी बड़ा योगदान दिया है। भारतीय शिक्षा को भारतीय स्वरूप प्रदान करने के लिए ये सदैव स्मरण किए जाएंगे। यहाँ इनके शैक्षिक विचारों का क्रमबद्ध वर्णन प्रस्तुत है –

शिक्षा का सम्प्रत्यय

स्वामी जी शिक्षा के द्वारा मनुष्य को लौकिक एवं पारलौकिक दोनों जीवनों के लिए तैयार करना चाहते थे। इनका विश्वास था कि जब तक हम भौतिक दृष्टि से संपन्न एवं सुखी नहीं होते तब तक ज्ञान, कर्म, भक्ति और योग, ये सब कल्पना की वस्तुएँ हैं। लौकिक दृष्टि से इन्होंने नारा दिया-'हमें ऐसी शिक्षा चाहिए जिसके द्वारा चरित्र का गठन हो, मन का बल बढ़े, बुद्धि का विकास हो और मनुष्य स्वावलंबी बनें' (We want that education by which character is formed, strength of mind is increased, the intellect is expanded and by which one can stand on one's own feet.)! इस प्रकार की शिक्षा को ये 'मनुष्य के निर्माण की शिक्षा' (Man Making Education) कहते थे। परंतु मनुष्य जीवन का अंतिम उद्देश्य ये अपने अंदर छिपी आत्मा (पूर्णता) की अनुभूति मानते थे। पारलौकिक दृष्टि से इन्होंने उद्घोषणा की-'शिक्षा मनुष्य की अंतर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है'

(Education is manifestation of perfection already present in man.)। इनकी दृष्टि से जो शिक्षा ये दोनों कार्य करती है, वही वास्तविक शिक्षा है। इस प्रकार की शिक्षा को ये पूर्ण शिक्षा (Complete Education) कहते थे।

शिक्षा के उद्देश्य

स्वामी विवेकानंद मनुष्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक, दोनों रूपों को वास्तविक मानते थे, सत्य मानते थे, इसलिए ये मनुष्य के दोनों पक्षों के विकास पर बल देते थे। इनकी दृष्टि से शिक्षा के द्वारा मनुष्य का भौतिक एवं आध्यात्मिक, दोनों प्रकार का विकास होना चाहिए। जो शिक्षा ये दोनों कार्य करे उसे ये पूर्ण शिक्षा कहते थे। इस हेतु स्वामी जी ने शिक्षा के जिन उद्देश्यों पर बल दिया है उन्हें हम निम्नलिखित रूप में क्रमबद्ध कर सकते हैं –

1. शारीरिक विकास स्वामी जी भौतिक जीवन की रक्षा एवं उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति और आत्मानुभूति दोनों के लिए स्वस्थ शरीर की आवश्यकता समझते थे। भौतिक दृष्टि से इन्होंने कहा कि इस समय हमें ऐसे बल्ष्टि लोगों की आवश्यकता है जिनकी पेशियाँ लोहे के समान दृढ़ हों और स्नायु फौलाद की तरह कठोर। आत्मानुभूति के लिए इन्होंने ज्ञान योग, कर्म योग; भक्ति योग अथवा राज योग को आवश्यक बताया और इनमें से किसी भी प्रकार की योग साधना के लिए स्वस्थ शरीर की आवश्यकता स्पष्ट की। इनकी दृष्टि से शिक्षा द्वारा सर्वप्रथम मनुष्य का शारीरिक विकास किया जाना चाहिए।

2. मानसिक एवं बौद्धिक विकास-स्वामी जी ने भारत के पिछड़ेपन का सबसे बड़ा कारण उसके बौद्धिक पिछड़ेपन को बताया और इस बात पर बल दिया कि हमें अपने बच्चों का मानसिक एवं बौद्धिक विकास करना चाहिए और इसके लिए उन्हें आधुनिक संसार के ज्ञान-विज्ञान से परिचित कराना चाहिए, जहाँ से जो भी अच्छा ज्ञान एवं कौशल मिले उसे प्राप्त करना चाहिए और उन्हें संसार में आत्मविश्वास के साथ खड़े होने की सामर्थ्य प्रदान करनी चाहिए।

3. समाज सेवा की भावना का विकास-स्वामी जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि पढ़ने-लिखने का अर्थ यह नहीं कि अपना ही भला किया जाए, मनुष्य को पढ़ने-लिखने के बाद मनुष्य मात्र की भलाई करनी चाहिए। इन्होंने भारत की जनता की दरिद्रता को स्वयं अपनी आँखों से देखा था। ये चाहते थे कि पढ़े-लिखे और संपन्न लोग दीन-हीनों की सेवा करें, उन्हें ऊँचा उठाने के लिए प्रयत्न करें। समाज सेवा से इनका तात्पर्य दया या दान से नहीं था, समाज सेवा से इनका तात्पर्य दीन-हीनों के उत्थान में सहयोग करने से था, उठेंगे तो वे स्वयं ही। ये शिक्षा द्वारा ऐसे समाज सेवियों की टीम तैयार करना चाहते थे। ये आध्यात्मिक दृष्टि से भी समाज सेवा को बहुत महत्त्व देते थे। ये मनुष्य को ईश्वर का मंदिर मानते थे और उसकी सेवा को ईश्वर की सेवा मानते थे।

4. नैतिक एवं चारित्रिक विकास-स्वामी जी ने यह बात अनुभव की कि शरीर से स्वस्थ, बुद्धि से विकसित और अर्थ से संपन्न होने के साथ-साथ मनुष्य को चरित्रवान भी होना चाहिए। चरित्र ही मनुष्य को सत्यनिष्ठ बनाता है, कर्तव्यनिष्ठ बनाता है। इसलिए इन्होंने शिक्षा द्व रा मनुष्य के नैतिक एवं चारित्रिक विकास पर भी बल दिया। नैतिकता से इनका तात्पर्य सामाजिक नैतिकता और धार्मिक नैतिकता दोनों से था और चारित्रिक विकास से तात्पर्य ऐसे आत्मबल के विकास से था जो मनुष्य को सत्य मार्ग पर चलने में सहायक हो और उसे असत्य मार्ग पर चलने से रोके। इनका विश्वास था कि ऐसे नैतिक एवं चरित्रवान मनुष्यों से ही कोई समाज अथवा राष्ट्र आगे बढ़ सकता है, ऊँचा उठ सकता है।

5. व्यावसायिक विकास-स्वामी जी ने भारत की दरिद्र जनता को बड़े निकट से देखा था; उनके शरीर से झाँकती हुई हड्डियों को रोटी, कपड़े और मकान की माँग करते हुइ देखा था। साथ ही इन्होंने पाश्चात्य देशों के वैभवशाली जीवन को भी देखा था और इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि उन देशों ने यह भौतिक संपन्नता ज्ञान-विज्ञान और तकनीकी के विकास और प्रयोग से प्राप्त की है। अतः इन्होंने उद्घोष किया कि कोरे आध्यात्मिक सिद्धांतों से जीवन नहीं चल सकता, हमें कर्म के हर क्षेत्र में आगे आना चाहिए। इसके लिए इन्होंने शिक्षा द्वारा मनुष्यों का उत्पादन एवं उद्योग कार्यों तथा अन्य व्यवसायों में प्रशिक्षित करने पर बल दिया।

6. राष्ट्रीय एकता एवं विश्वबंधुत्व का विकास-स्वामी जी के समय हमारा देश अंग्रेजों के आधीन था, हम परतंत्र थे। स्वामी जी ने अनुभव किया कि परतंत्रता हीनता को जन्म देती है और हीनता हमारे सारे दुखों का सबसे बड़ा कारण है। अतः जब ये अमेरिका से भारत लौटे तो इन्होंने भारत की भूमि पर पैर रखते ही युवकों का आह्वान किया 'तुम्हारा सबसे पहला कार्य देश को स्वतंत्र कराना होना चाहिए और इसके लिए जो भी बलिदान करना पड़े, उसके लिए तैयार होना चाहिए।' इन्होंने उस समय ऐसी शिक्षा की व्यवस्था की आवश्यकता पर बल दिया जो देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना जागृत करे, उन्हें संगठित होकर देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत करे। परंतु ये संकीर्ण राष्ट्रीयता के हामी नहीं थे, ये तो सब मनुष्यों में उस परमात्मा के दर्शन करते थे और इस दृष्टि से विश्वबंधुत्व में विश्वास करते थे।

7. धार्मिक शिक्षा एवं आध्यात्मिक विकास-स्वामी जी शिक्षा द्वारा मनुष्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों पक्षों के विकास पर समान बल देते थे। इनका स्पष्ट मत था कि मनुष्य का भौतिक विकास आध्यात्मिकता की पृष्ठिभूमि में होना चाहिए और उसका आध्यात्मिक विकास भौतिक विकास के आधार पर होना चाहिए और ऐसा तभी संभव है जब मनुष्य धर्म का पालन करे। धर्म को स्वामी जी उसके व्यापक रूप में लेते थे। इनकी दृष्टि से धर्म वह है जो हमें प्रेम सिखाता है और द्वेष से बचाता है, हमें मानवमात्र की सेवा में प्रवृत्त करता है और मानव के शोषण से बचाता है और हमारे भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार के विकास में सहायक होता है। स्वामी जी मनुष्य को प्रारंभ से ही ऐसे धर्म की शिक्षा देने पर बल देते थे। इनकी दृष्टि से ये सब गुण हमारे अद्वैत वेदांत धर्म में हैं, यह संसार में एकत्व भाव की अनुभूति कराता है और सबसे प्रेम करना सिखाता है। यह सार्वभौमिक धर्म है। इनकी दृष्टि से संसार के अन्य धर्म भी कुछ ऐसी ही शिक्षाएँ देते हैं परंतु उन सबमें हमारा भारतीय वेदांत धर्म सर्वश्रेष्ठ है। अतः हमें प्रारंभ से ही उसकी शिक्षा देनी चाहिए। साथ ही बच्चों को जीवन के अंतिम उद्देश्य मुक्ति की प्राप्ति के लिए प्रारंभ से ही ज्ञान योग, कर्म योग, भक्ति योग अथवा राज योग की ओर उन्मुख करना चाहिए। इनकी दृष्टि से वास्तविक शिक्षा वही है जो मनुष्य को भौतिक जीवन जीने के लिए और आध्यात्मिक मुक्ति प्राप्त करने के लिए तैयार करती है।

शिक्षा की पाठ्यचर्या

पाठ्यचर्या तो उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन होती है। स्वामी जी ने अपने द्वारा निश्चित शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु एक विस्तृत पाठ्यचर्या का विधान प्रस्तुत किया। उन्होंने शिक्षा की पाठ्यचर्या में मनुष्य के शारीरिक विकास हेतु खेल-कूद, व्यायाम और यौगिक क्रियाओं और मानसिक एवं बौद्धिक विकास हेतु भाषा, कला, संगीत, इतिहास, भूगोल, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, गणित और विज्ञान विषयों को स्थान देने पर बल दिया। भाषा के संदर्भ में स्वामी जी का दृष्टिकोण बड़ा विस्तृत था। इनकी दृष्टि से अपने सामान्य जीवन के लिए मातृभाषा, अपने धर्म दर्शन को समझने के लिए संस्कृत भाषा, अपने देश को समझने के लिए प्रादेशिक भाषाओं और विदेशी ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीकी को समझने के लिए अंग्रेजी भाषा का ज्ञान आवश्यक है, अत: इन भाषाओं को पाठ्यक्रम में स्थान देना चाहिए। कला को ये मनुष्य जीवन का अभिन्न अंग मानते थे और इसके अंतर्गत चित्रकला, वास्तुकला, संगीत, नृत्य और अभिनय सभी को पाठ्यक्रम में स्थान देने के पक्ष में थे। इतिहास के अंतर्गत ये भारत और यूरोप, दोनों के इतिहास को पढ़ाने के पक्ष में थे। इनका तर्क था कि भारत का इतिहास पढ़ने से बच्चों में स्वदेश प्रेम विकसित होगा और यूरोप का इतिहास पढ़ने से वे भौतिक श्री प्राप्त करने के लिए कर्मशील होंगे। इन्होंने राजनीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र को भी पाठ्यचर्या में स्थान देने पर बल दिया। इनका विश्वास था कि इन दोनों विषयों के अध्ययन से बच्चों में राजनैतिक चेतना जागृत होगी और वे आर्थिक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करेंगे। मनुष्यों में समाज सेवा का भाव उत्पन्न करने और उन्हें समाज सेवा की ओर उन्मुख करने के लिए स्वामी जी ने शिक्षा के सभी स्तरों पर समाज सेवा को अनिवार्य करने पर बल दिया; उनके नैतिक एवं चारित्रिक विकास हेतु धर्म एवं नीतिशास्त्र की शिक्षा को अनिवार्य करने पर बल दिया, व्यावसायिक विकास हेतु मातृ भाषा, अंग्रेजी भाषा, भौतिक विज्ञान, कृषि विज्ञान, तकनीकी और उद्योग कौशल की शिक्षा पर बल दिया और उनके आध्यात्मिक विकास हेतु साहित्य, धर्म दर्शन और नीतिशास्त्र विषयों तथा भजन, कीर्तन सत्संग और ध्यान की क्रियाओं को स्थान देने पर बल दिया।

स्वामी जी ने देश में उच्च शिक्षा की व्यवस्था करने और उसके द्वारा अपने ही देश में इंजीनियरों, डॉक्टरों, वकीलों और प्रशासकों आदि की शिक्षा की व्यवस्था करने पर भी बल दिया। ये जानते थे कि जब तक हम जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आत्मनिर्भर नहीं हो जाते तब तक हम न भौतिक उन्नति कर सकते हैं और न ही आध्यात्मिक। इन्होंने शिक्षाविदों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि देश-विदेश में, जहाँ जो अच्छा है, लाभकारी है, हमारे समाज और राष्ट्र के उत्थान के लिए आवश्यक है, उसे उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाए। इस प्रकार शिक्षा की पाठ्यचर्या के संबंध में स्वामी जी का दृष्टिकोण अति व्यापक था। और क्यों न होता, इन्होंने अपने देश के उच्चतम धर्म-दर्शन को पढ़ा और समझा था और पाश्चात्य जगत के भौतिक वैभव को अपनी आँखों से देखा था। ये जानते थे कि पाश्चात्य जगत के भौतिक ज्ञान से हम अपना भौतिक विकास कर सकते हैं और अपने देश के आध्यात्मिक ज्ञान से अपना आध्यात्मिक विकास कर सकते हैं। इस प्रकार शिक्षा की पाठ्यचर्या के संबंध में स्वामी जी का दृष्टिकोण अति आधुनिक और अति व्यापक था।

शिक्षण विधियाँ

स्वामी जी आत्मा की पूर्णता में विश्वास करते थे और यह मानते थे कि आत्मा सर्वज्ञ है। परंतु यह तभी संभव है जब मनुष्य को स्वयं आत्मज्ञान हो, वह स्वयं आत्मद्दष्टा हो। स्वामी जी के विचार से मनुष्य को आत्मज्ञान तभी होता है जब उसे भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार का ज्ञान हो। स्वामी जी ने भौतिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रत्यक्ष, अनुकरण, व्याख्यान, निर्देशन, विचार-विमर्श और प्रयोग विधियों का समर्थन किया है और आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए स्वाध्याय, मनन, ध्यान, और योग की विधियों का समर्थन किया है। इन्होंने अपने अनुभव के आधार पर यह बात बहुत बलपूर्वक कही कि भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त करने की सर्वोत्तम विधि योग विधि (एकाग्रता) है। स्वामी जी स्वयं शिक्षक थे। इन्होंने देश-विदेश में लोगों को वेदांत की शिक्षा दी थी और उन्हें ध्यान क्रिया में प्रशिक्षित किया था। परंतु इन्होंने उपरोक्त सभी विधियों को कुछ अपने विशिष्ट रूप में प्रयोग किया था, अतः यहाँ इनके इस विशिष्ट रूप को समझना आवश्यक है।

1. अनुकरण विधि-स्वामी जी यह बात जानते थे कि मनुष्य प्रारंभ में भाषा और व्यवहार की विधियाँ अनुकरण द्वारा ही सीखता है, इसलिए इन्होंने शुद्ध भाषा और समाज सम्मत आचरण की शिक्षा के लिए इसे सर्वोत्तम विधि बताया। इन्होंने इस बात पर बल दिया कि माता-पिता और शिक्षकों को बच्चों के सामने शब्द भाषा का प्रयोग करना चाहिए और आचरण के उच्च आदर्श प्रस्तुत करने चाहिए जिनका अनुकरण कर बच्चे शुद्ध भाषा सीखें और उत्तम आचरण करें। खेल-कूद, व्यायाम, योगासन एवं अन्य क्रियाओं की शिक्षा के लिए भी ये इस विधि को उपयुक्त मानते थे। ये लोगों को योग की शिक्षा इसी विधि से देते थे।

2. व्याख्यान विधि-तथ्यों की जानकारी मौखिक रूप से देने की विधि को व्याख्यान विधि कहते हैं। स्वामी जी यह बात मानते थे कि पूर्वजों द्वारा खोजे सत्यों का ज्ञान व्याख्यान विधि द्वारा सरलता और शीघ्रता से कराया जा सकता है। परंतु ये किसी भी तथ्य को विवेक की कसौटी पर कसकर स्वीकार करने पर बल देते थे। यही इनकी व्याख्यान विधि की विशेषता थी। ये वेदांत के सिद्धांतों की शिक्षा व्याख्यान विधि द्वारा ही देते थे परंतु तर्कपूर्ण ढंग से देते थे, वैज्ञानिक ढंग से देते थे।

3. तर्क एवं विचार-विमर्श विधि-तथ्यों को सीधे ग्रहण न करके उनके विषय में 'क्या', 'क्यों', और 'कैसे' प्रश्न करने, उनका तार्किक उत्तर प्राप्त करने, अपनी शंकाओं को बार-बार उठाने और उनका समाधान खोजने की विधि को तर्क एवं विचार-विमर्श विधि कहते हैं। विवेकानंद की तर्क विधि भारतीय न्याय दर्शन की तर्क विधि से भिन्न है। इस विधि में शिक्षक शिक्षार्थियों की शंकाओं का समाधान करते हैं। इस आधार पर कुछ विद्वान इसे शंका-समाधान विधि भी कहते हैं। इस विधि में शिक्षक शिक्षार्थियों की शंकाओं के समाधान हेतु तथ्यों की व्याख्या करते हैं। इस आधार पर कुछ विद्वान इसे व्याख्या विधि कहते हैं। तथ्यों की व्याख्या में तथ्यों का विश्लेषण करना पड़ता है। इस आधार पर कुछ विद्वान इसे विश्लेषण विधि कहते हैं। स्वामी जी किसी भी तथ्य को स्पष्ट करने के लिए तर्क-पूर्ण विचार-विमर्श करते थे। इसलिए उन्होंने इस विधि को तर्क एवं विचार-विमर्श विधि कहा है।

4. निर्देशन और परामर्श विधि-वैयष्टिक निर्देशन और परामर्श द्वारा शिक्षार्थियों का मार्ग निर्देशन करने, उनकी स्वयं सीखने में सहायता करने और बीच-बीच में उनकी शंकाओं का समाधान करने की विधि को निर्देशन एवं परामर्श विधि कहते हैं। इस विधि में शिक्षक शिक्षार्थियों की; क्या पढ़ें और कैसे पढ़ें; क्या करें और कैसे करें, इस संबंध में सहायता करते हैं। इस विधि में शिक्षार्थी स्वाध्याय अथवा स्व क्रिया द्वारा स्वयं सीखते हैं, शिक्षक तो उनका केवल मार्ग दर्शन करते हैं। स्वामी जी किशोर और युवकों की शिक्षा के लिए इस विधि को उत्तम विधि मानते थे।

5. प्रदर्शन एवं प्रयोग विधि-स्वामी जी प्रयोगिक विषयों-विज्ञान एवं तकनीकी और क्रियाओं के शिक्षण एवं प्रशिक्षण के लिए इस विधि के प्रयोग का समर्थन करते थे। इस विधि में शिक्षक वस्तु अथवा क्रिया को प्रस्तुत करता है, शिक्षार्थी अवलोकन करते हैं, शिक्षक हर तथ्य को स्पष्ट करता है, शिक्षार्थी उसे प्रयोग करके निश्चित करते हैं। आज तो इस विधि में बच्चों की सक्रिय साझेदारी ली जाती है। अपने सही अर्थों में विज्ञान आदि प्रायोगिक विषयों की शिक्षा इसी विधि से दी जा सकती है।

6. स्वाध्याय विधि-स्वाध्याय विधि का अर्थ है स्वयं अध्ययन करना। इस विधि में शिक्षार्थी तथ्यों का ज्ञान तत्संबंधी पुस्तकों के अध्ययन द्वारा प्राप्त करते हैं। स्वामी जी अपने धर्म-दर्शन के ज्ञान के लिए आर्य ग्रंथों के अध्ययन पर बल देते थे। ये कहा करते थे कि सब कुछ उपदेशों एवं व्याख्यानों द्वारा नहीं बताया जा सकता, किसी भी विषय के पूर्ण ज्ञान के लिए उससे संबंधित प्रामाणिक ग्रंथों का अध्ययन आवश्यक होता है। शिक्षार्थी द्व ारा इन प्रामाणिक ग्रंथों को स्वयं पढ़ना और स्वयं समझने का प्रयत्न करना ही स्वाध्याय विधि है। स्वाध्याय को स्वामी जी तब तक अधूरा मानते थे जब तक उस पर चिंतन, मनन और निदिध्यासन नहीं किया जाए। इनका उद्घोष था कि किसी भी तथ्य को विवेक की कसौटी पर कसकर ही स्वीकार करो। इस प्रकार स्वामी जी द्वारा अनुमोदित स्वाध्याय विधि आज की पुस्तक विधि अथवा पुस्तकालय विधि से कुछ भिन्न है, कुछ अधिक है और कुछ अधिक उपयोगी।

7. योग विधि-स्वामी जी इसे भौतिक एवं आध्यात्मिक किसी भी प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने अथवा ज्ञान की खोज करने की सर्वोत्तम विधि मानते थे। इनकी दृष्टि से भौतिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए अल्प योग (अल्पकालीन एकाग्रता) ही पर्याप्त होता है परंतु आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए पूर्ण योग (दीर्घकालीन एकाग्रता) की आवश्यकता होती है। आज के मनोवैज्ञानिक भी तो यही कहते हैं कि ज्ञान प्राप्ति के लिए सीखे जाने वाली वस्तु अथवा क्रिया पर ध्यान केंद्रित करना आवश्यक है। हमारा अनुभव भी यही बताता है कि सीखने वाले में सीखने के लिए जितना अधिक योग होता है, वह उतनी ही शीघ्रता से सीखता है। स्वामी विवेकानंद तो बचपन से ही इस विधि का प्रयोग करते थे।

अनुशासन

मनुष्य जीवन के मुख्य रूप में तीन पक्ष होते हैं-प्राकृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक। स्वामी जी इन तीनों पक्षों को महत्त्व देते थे, परंतु सर्वाधिक महत्त्व आध्यात्मिक पक्ष को देते थे। स्वामी विवेकानंद के अनुसार अनुशासन का अर्थ है अपने व्यवहार में आत्मा द्वारा निर्दिष्ट होना। इनके अनुसार जब मनुष्य अपने प्राकृतिक 'स्व' से प्रेरित होकर कार्य करता है तो हम उसे अनुशासित नहीं कह सकते, जब वह अपने प्राकृतिक 'स्व' पर संयम रखकर सामाजिक 'स्व' से प्रेरित होता है तो हम उसे अनुशासित कह सकते हैं, परंतु वास्तव में अनुशासित वह है जो आत्मा से प्रेरित होकर कार्य करता है।

स्वामी जी शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों को आत्मानुशासन का उपदेश देते थे। प्रश्न उठता है-बच्चे आत्मानुशासन की स्थिति में कैसे आ सकते हैं। इस संबंध में स्वामी जी का अपना मत था कि जब शिक्षक शिक्षार्थियों के सामने आत्मानुशासन का उच्च आदर्श प्रस्तुत करेंगे तो बच्चे भी उनका अनुसरण करेंगे और फिर धीरे-धीरे सोचने और करने की उन्हें अंदर से प्रेरणा मिलने लगेगी, वे आत्मानुशासन की ओर बढ़ेंगे।

शिक्षक

स्वामी जी प्राचीन गुरुगृह प्रणाली के समर्थक थे। इनकी दृष्टि से शिक्षकों को भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार का ज्ञान होना चाहिए जिससे वे बच्चों को लौकिक एवं पारलौकिक दोनों जीवन के लिए तैयार कर सकें। ये शिक्षकों को संयमी और आत्माज्ञानी होने का उपदेश देते थे, तभी तो शिष्य उनका अनुसरण कर संयमी एवं आत्मज्ञानी हो सकते हैं। स्वामी जी शिक्षकों से यह भी आशा करते थे कि वे मनोविज्ञान की सहायता से बच्चों की कर्मजनित भिन्नता को समझकर उनके लिए उनके अनुकूल शिक्षा की व्यवस्था करें और आत्मज्ञान द्वारा उनकी आध्यात्मिक एकता को समझकर उन्हें आत्मतत्व का बोध करने में सहायक हों। इस प्रकार स्वामी जी शिक्षक के प्राचीन और अर्वाचीन, दोनों स्वरूपों के समर्थक थे।

शिक्षार्थी

स्वामी जी के अनुसार भौतिक एवं आध्यात्मिक, किसी भी प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षार्थी ब्रह्मचर्य का पालन करें। इनका विश्वास था कि जब तक शिक्षार्थी इंद्रिय निग्रह नहीं करते, उनमें सीखने के लिए प्रबल इच्छा उत्पन्न नहीं होती और वे गुरु में श्रद्धा रखकर सत्य को जानने का प्रयत्न नहीं करते तब तक वे न तो भौतिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और न ही आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। स्वामी जी के अनुसार गुरु-शिष्य का संबंध केवल लौकिक ही नहीं होना चाहिए अपितु उन्हें एक-दूसरे के दिव्य स्वरूप को भी देखना-समझना चाहिए। विद्यालय स्वामी जी गुरु गृह प्रणाली के हामी थे। परंतु आधुनिक परिप्रेक्ष्य में ये यह जानते थे कि अब गुरु गृह जन कोलाहल से दूर कहीं प्रकति की सूरम्य गोद में स्थापित नहीं किए जा सकते। ये केवल इस बात पर बल देते थे कि विद्यालयों का पर्यावरण शुद्ध हो और वहाँ व्यायाम, खेल-कूद, अध्ययन-अध्यापन और इन सबके साथ-साथ समाज सेवा, भजन-कीर्तन एवं ध्यान की क्रियाएँ भी संपादित हों।

शिक्षा के अन्य अक्ष

1. जन शिक्षा-स्वामी जी के समय अपने देश की स्थिति बड़ी दयनीय थी। इसके विपरीत पश्चिमी देशों की दशा बहुत अच्छी थी, वहाँ के लोग संपन्न थे और वैभवशाली जीवन जी रहे थे। स्वामी जी ने इस सबको अपनी आँखों से देखा था। इन्होंने अनुभव किया कि हमारी राजनैतिक पराधीनता, आर्थिक विपन्नता, सामाजिक पिछड़ापन और धार्मिक अंधविश्वास, इन सबका मूल कारण अशिक्षा है। इन्होंने उद्घोष किया कि जब तक भारत के सभी नर-नारी शिक्षित नहीं होते तब तक हम जीवन के किसी भी क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ सकते। इन्होंने समाज और राज्य से जन शिक्षा की व्यवस्था की अपेक्षा की। जन शिक्षा से स्वामी जी का तात्पर्य बच्चों, युवकों और अशिक्षित प्रौढ़ों सबको शिक्षित करने से था। इन्होंने शिक्षित लोगों का आह्वान किया कि वे अशिक्षित प्रौढ़ों और वृद्धों को साक्षर बनाएँ, उन्हें शिक्षित करें।

2. स्त्री शिक्षा-स्वामी जी अपने देश की स्त्रियों की दयनीय दशा के प्रति बड़े सचेत थे। इन्होंने उद्घोष किया कि नारी का सम्मान करो, उन्हें शिक्षित करो और उन्हें आगे बढ़ने के अवसर दो। इन्होंने स्पष्ट किया कि जब तक हम नारी को शिक्षित नहीं करते तब तक समाज को शिक्षित नहीं कर सकते और जब तक समाज को शिक्षित नहीं करते तब तक समाज अथवा राष्ट्र का विकास नहीं कर सकते। परंतु स्त्री शिक्षा के संबंध में इनका दृष्टिकोण पूर्णरूपेण भारतीय था। ये उन्हें आदर्श गृहणी, आदर्श माताएँ, आदर्श शिक्षिकाएँ और समाज सुधारक बनाना चाहते थे। ये नारियों के लिए ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करना चाहते थे जिसके द्वारा ऐसी नारियों का निर्माण हो जो पवित्र हों, निर्भय हों, गृहस्थ धर्म के निर्वाह में निपुण हों, वीर पुत्रों को जन्म दें, आदर्श माताएँ बनें और समाज को उचित दिशा दें।

3. सह शिक्षा-स्वामी जी सह शिक्षा के विरोधी थे। इनका पहला तर्क तो यह था कि स्त्री-पुरुषों की शिक्षा की पाठ्यचर्या समान नहीं होती इसलिए उन्हें साथ-साथ कैसे पढ़ाया जा सकता है। इनका दूसरा तर्क यह था कि सह शिक्षा आत्म संयम में बाधक होती है। ये लड़कियों के लिए अलग से विद्यालयों की स्थापना करने और उनमें केवल स्त्री शिक्षिकाओं की नियुक्ति करने के पक्ष में थे।

4. व्यावसायिक शिक्षा-स्वामी जी ने अपने देश की नंगी तस्वीर देखी थी और साथ ही पाश्चात्य देशों का वैभव देखा था। इन्होंने अनुभव किया कि अपने देश की निर्धनता के दो मुख्य कारण हैं-सामान्य शिक्षा का अभाव और विशिष्ट एवं व्यावसायिक शिक्षा का अभाव। अतः इन्होंने पहला नारा जन शिक्षा का दिया और दूसरा नारा विशिष्ट एवं व्यावसायिक शिक्षा का दिया। व्यावसायिक शिक्षा से स्वामी जी का तात्पर्य केवल कुटीर उद्योगों और सामान्य शिल्पों की शिक्षा से नहीं था अपितु पाश्चात्य देशों की विज्ञान और तकनीकी शिक्षा से भी था, देश के लिए इंजीनियर, डॉक्टर और वकील आदि तैयार करने से भी था और प्रशासक और संगठनकर्ता तैयार करने से भी था। इस प्रकार व्यावसायिक शिक्षा के संदर्भ में इनका दृष्टिकोण अति व्यापक और व्यावहारिक था।

5. धर्म शिक्षा-स्वामी जी धार्मिक शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। परंतु धार्मिक शिक्षा के संदर्भ में स्वामी जी के विचार बहुत उदार थे। ये धर्म को किसी सम्प्रदाय की सीमा में बाँधने के पक्ष में नहीं थे ये धर्म को मनुष्य जीवन के शाश्वत मूल्यों के उद्घोषक के रूप में स्वीकार करते थे। ये स्वयं अपने गुरुदेव श्री रामकृष्ण परमहंस की इस बात का प्रचार एवं प्रसार करते थे कि संसार के सभी धर्म एक हैं, सभी एक ही उद्देश्य की प्राप्ति के भिन्न-भिन्न मार्ग हैं। धर्म के संबंध में स्वामी जी की दो बातें और उल्लेखनीय हैं जो उन्होंने शिकागो विश्व धर्म सम्मेलन में कही थीं। पहली यह कि–'मुझे गर्व है कि मैं हिंदू धर्मावलंबी हूँ जो सहिष्णुता और विश्वबंधुत्व की शिक्षा देता है'; और दूसरी यह कि-'लोगों का यह सोचना व्यर्थ है कि संसार में कभी केवल एक ही धर्म होगा।' इनके इन उद्घोषों से स्पष्ट है कि ये ऐसे धर्म की शिक्षा के समर्थक थे जो मनुष्यों को सहिष्णुता और विश्वबंधुत्व की शिक्षा दे।

6. राष्ट्रीय शिक्षा-यूँ स्वामी जी ने कोई राष्ट्रीय शिक्षा योजना तो प्रस्तुत नहीं की परंतु इन्होंने इसकी आवश्यकता पर बहुत बल दिया था। इन्होंने स्पष्ट किया कि शिक्षा व्यक्ति, समाज और राष्ट्र, सभी के उत्थान के लिए मूलभूत आवश्यकता है अत: किसी भी राष्ट्र को अपने नागरिकों की उचित शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए। अपने भारत राष्ट्र की शिक्षा के संदर्भ में इनके विचार बहुत स्पष्ट थे। इन्होंने उद्घोष किया कि जहाँ से जो अच्छा और उत्तम मिले उसी स्वीकार करो। इन्होंने अनुभव किया कि भौतिक ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में पाश्चात्य देश आगे हैं और आध्यात्मिक ज्ञान के क्षेत्र में भारत का कोई सानी नहीं है, इसलिए इन्होंने देश के भौतिक विकास के लिए पाश्चात्य देशों के भौतिक ज्ञान-विज्ञान एवं कौशलों को सीखने और आध्यात्मिक विकास के लिए भारतीय धर्म-दर्शन को सीखने पर बल दिया। वेदांत को तो ये सार्वभौमिक धर्म मानते थे इसलिए उसकी शिक्षा अनिवार्य रूप से देने पर बल देते थे।

श्री अरविंद

श्री अरविंद का जीवन परिचय

श्री अरविंद का जन्म 15 अगस्त, 1872 को कलकत्ता के एक संपन्न परिवार में हुआ था। इनके पिता श्री कृष्णघनघोष कलकत्ता के प्रसिद्ध डॉक्टर थे और पाश्चात्य संस्कृति के प्रशंसक थे। इनके घर में नौकर तक अंग्रेजी भाषा बोलते थे। परंतु डॉक्टर साहब थे बड़े दयालु प्रवृत्ति के। ऐसे परिवार में श्री अरविंद का लालन-पालन हुआ।

श्री अरविंद की शिक्षा का आरंभ 1877 में दार्जिलिंग के 'लोरेटो कान्वेंट स्कूल' से हुआ। यह उस समय का माना हुआ इंग्लिश स्कूल था। दो वर्ष बाद 1879 में इन्हें, इनके दोनों भाइयों और बहिन के साथ आगे की शिक्षा के लिए इंग्लैंड भेज दिया गया। इंग्लैंड में श्री अरविंद की शिक्षा का भार ड्रिवेट दंपत्ति पर छोड़ा गया। इनसे श्री अरविंद ने लैटिन भाषा सीखी। 1885 में इन्हें लंदन के 'सैंट पाल स्कूल' में भर्ती कराया गया। यहाँ इन्होंने ग्रीक भाषा का अध्ययन किया। 1889 में इन्हें कैंब्रिज के 'किंग्स कॉलिज' की छात्रवृत्ति मिली। इस कॉलिज में इन्होंने फ्रेंच, इटेलियन, स्पेनिस और जर्मन भाषाओं का अध्ययन किया। 1890 में ये अपने पिता की आज्ञा से उस समय की इंडियन सिविल सर्विस की परीक्षा में बैठे और इसमें सफलता प्राप्त की। परंतु अंग्रेजों की दासता में काम करना इन्हें अच्छा प्रतीत नहीं हुआ और ये उसकी घुड़सवारी की परीक्षा में नहीं बैठे। 1893 में श्री अरविंद भारत लौट आए।

भारत लौटने पर श्री अरविंद ने सर्वप्रथम तत्कालीन बड़ौदा राज्य में प्रशासनिक पद पर कार्य किया। इसके बाद ये बड़ौदा राज्य के ही 'स्टेट कॉलिज बड़ौदा' में फ्रेंच भाषा के प्राध्यापक नियुक्त हुए। कुछ ही समय बाद इन्हें यहाँ अंग्रेजी भाषा का प्राध्यापक बना दिया गया। आगे चलकर ये इसी कॉलिज के प्राचार्य बने। बड़ौदा में रहते हुए इन्होंने संस्कृत, बंगाली, मराठी और गुजराती भाषाओं का अध्ययन किया और इनके साहित्यों के अध्ययन से भारतीय संस्कृति का ज्ञान प्राप्त किया। 1901 में इनका विवाह हो गया, परंतु इससे इनके अध्ययन, चिंतन और मनन में लेशमात्र अंतर नहीं पड़ा, ये अध्ययन, चिंतन और मनन में मग्न रहते थे। गीता ने इनके जीवन को नया मोड़ दिया। ये एक ओर भारत को अंग्रेजों की दासता से मुक्त कराने और दूसरी ओर ईश्वर दर्शन के लिए व्याकुल हो उठे। 1906 में इन्होंने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया और राष्ट्रीय आंदोलन में कूद पड़े।

सर्वप्रथम इन्होंने 1906 में कलकत्ता के 'राष्ट्रीय विद्यालय' के प्राचार्य के पद का कार्यभार संभाला। यह उस समय राष्ट्रीय आंदोलन का केंद्र था। इसी के साथ इन्होंने उस समय के क्रांतिकारी समाचार-पत्र 'वंदेमातरम्' का संपादन किया। 1907 में एक क्रांतिकारी लेख लिखने के कारण इन्हें जेल भेज दिया गया, परंतु कुछ ही माह बाद छोड़ दिया गया। 1908 में इन्हें एक बम दुर्घटना के साथ जोड़कर पुनः जेल भेजा गया। इस बार इन्हें जेल के अंदर एक अद्‌भुत अनुभूति हुई। इन्हें जेल की हर वस्तु में भगवान् श्री कृष्ण दिखाई दिए और इनके अंत:करण में देश और सनातन धर्म की रक्षा का भाव जागृत हुआ। इस बार जेल से बाहर आने के बाद ये और अधिक सक्रिय हो गए। अंग्रजों ने इन पर कड़ी निगरानी शुरू कर दी और वे इन्हें परेशान करने लगे। अंग्रेजों से बचने के लिए ये 10 फरवरी, 1910 को चंद्र नगर चले गए। यहाँ से श्री अरविंद 4 अप्रैल, 1910 को पांडिचेरी पहुँचे। पांडिचेरी मद्रास से दक्षिण दिशा में 160 किमी. की दूरी पर स्थित एक बंदरगाही नगर है।

यह उस समय फ्रांसीसी शासन में था। श्री अरविंद के साथ इनके चार युवा साथी भी थे। यहाँ ये एक मकान किराए पर लेकर उसमें रहने लगे। यहाँ ये अंग्रेजों के भय से मुक्त थे। ऐसे भयमुक्त वातावरण में श्री अरविंद ध्यान योग साधना की ओर प्रवृत्त हुए। यहाँ से इनके जीवन का नया अध्याय शुरू होता है। अब श्री अरविंद घंटों तक ध्यान योग साधना में मग्न रहने लगे और उनका यह मकान ध्यान योग का केंद्र बन गया। 29 मार्च, 1914 को एक फ्रांसीसी महिला मीरा रिचार्ड ने श्री अरविंद से भेंट की और इनकी योग साधना से बड़ी प्रभावित हुईं और उन्होंने इस केंद्र के विकास के लिए खुले हाथों से दान देना शुरू किया। 15 अगस्त, 1914 से श्री अरविंद ने यहाँ से एक

दार्शनिक पत्रिका 'आर्य' का प्रकाशन शुरू किया और इसके माध्यम से अपने दार्शनिक विचारों को सामान्य व्यक्तियों तक पहुँचाना शुरू किया। इससे श्री अरविंद की ख्याति दूर-दूर तक फैलने लगी। 24 अप्रैल, 1920 को यह फ्रांसीसी महिला मीरा रिचार्ड स्थायी रूप से आश्रम में आ गईं और आश्रम के कार्यों के संपादन में सहयोग करने लगीं। उनके आने से यहाँ शिष्यों की संख्या बढ़ने लगी। तब उनके आवास के लिए कुछ और मकान लेने पड़े और साथ ही उनके खाने-पीने की व्यवस्था करनी पड़ी।

श्री अरविंद का साधना क्रम जारी रहा। साधना के साथ-साथ ये लेखन कार्य भी करते रहे और उपदेश भी देते रहे। 1926 में इस आश्रम ने संगठित रूप धारण किया। उसी वर्ष (1926) में 26 नवंबर के दिन श्री अरविंद को अपनी साधना का फल प्राप्त हुआ, इन्हें लगा कि इनका अधिकार उस अनंत शक्ति वाले मन पर है जो भूत, वर्तमान और भविष्य, सभी को देख-समझ सकता है। इसके बाद श्री अरविंद पूर्णतः एकांत जीवन व्यतीत करने लगे और वर्ष में केवल चार दिन जनता के बीच उपस्थित होते थे। उस समय यह फ्रांसीसी महिला मीरा रिचार्ड श्री माँ के रूप में स्थापित हो चुकी थीं। ये ही श्री अरविंद के संदेश आश्रमवासियों को और जन-जन तक पहुँचाती थीं। 2 दिसंबर, 1943 को श्री अरविंद आश्रम में आश्रम स्कूल की स्थापना की गई और इसमें श्री अरविंद के शैक्षिक विचारों को मूर्त रूप दिया गया। 5 दिसंबर, 1950 को इस सिद्ध पुरुष ने इस संसार को त्याग कर दिव्य लोक को प्रस्थान किया। प्रत्यक्षदर्शियों का कहना है कि पूरे 111 घंटों तक उनके शरीर से दिव्य ज्योति निकलती रही थी, सभी आश्रमवासियों एवं उपस्थित जनसमूह ने उसे अपनी आँखों से देखा था।

श्री अरविंद का दार्शनिक चिंतन

श्री अरविंद गीता के अनन्य भक्त थे। इन्होंने गीता के कर्म योग एवं ध्यान योग की वैज्ञानिक व्याख्या की है। इनकी दृष्टि से मानव एवं दिव्य शक्ति का संयोग ही योग है। दूसरे शब्दों में योग वह साधन है जिससे मानव दिव्य शक्ति की अनुभूति करता है। श्री अरविंद मानव को योग द्वारा आत्मतत्व की अनुभूति कर ब्रह्म में लीन होने का उपदेश नहीं देते थे, ये तो इसके द्वारा संपूर्ण मानव जाति को अज्ञान, अंधकार और मृत्यु से ज्ञान, प्रकाश और अमृत्व की ओर ले जाना चाहते थे। इसीलिए इनकी विचारधारा को सर्वांग योग दर्शन कहा जाता है। श्री अरविंद के सर्वांग योग दर्शन को समझने के लिए उसकी तत्व मीमांसा, ज्ञान एवं तर्क मीमांसा और मूल्य एवं आचार मीमांसा को समझना आवश्यक है, अतः प्रस्तुत है –

अरविंद सर्वांग योग दर्शन की तत्व मीमांसा

श्री अरविंद के अनुसार इस सृष्टि का कर्ता ईश्वर है। अब प्रश्न उठता है कि ईश्वर इस जगत का निर्माण किस प्रकार करता है। इसकी व्याख्या श्री अरविंद ने विकास सिद्धांत के आधार पर की है। इनके अनुसार विकास की दो दिशाएँ हैं-अवरोहण और आरोहण। इनका स्पष्टीकरण है कि ब्रह्म अवरोहण द्वारा वस्तु जगत का रूप धारण करता है। इस अवरोहण के इन्होंने सात सोपान बताए हैं-सत् चित्त आनंद अतिमानस मानस प्राण द्रव्य। इनका तर्क है कि द्रव्य रूप इस जगत में मनुष्य अपने द्रव्य रूप से आरोहण द्व रा सत् की ओर बढ़ता है। इसके भी इन्होंने सात सोपान बताए हैं-द्रव्य प्राण मानस अति मानस आनंद चित्त सत्। ब्रह्म को ये सत् और ईश्वर को सत्-चित्त-आनंद के रूप में स्वीकार करते थे। आत्मा को अरविंद ने गीता के पुरुष रूप में स्वीकार किया है। इनकी दृष्टि से आत्मा में परमात्मा के दो गुण होते हैं-आनंद और चित्त और यह विभिन्न योनियों से होती हुई मनुष्य योनि में प्रवेश करती है और इस शरीर के माध्यम से सत् की ओर बढ़ती है।

मनुष्य को भी श्री अरविंद ने विकसित प्राणी के रूप में लिया है। इनकी दृष्टि से मनुष्य जन्म से विकास के दो सोपान पार कर मानस सोपान पर पैदा होता है। जन्म के बाद वह अतिमानस, अतिमानस से आनंद, आनंद से चित्त् और चित्त से सत् की ओर बढ़ता है। श्री अरविंद के अनुसार मनुष्य जीवन का अंतिम उद्देश्य सत् + चित्त + आनंद अर्थात् ईश्वर की प्राप्ति ही होती है। मनुष्य के विकास के संबंध में श्री अरविंद का मत है कि उसके भौतिक विकास के लिए द्रव्य ज्ञान आवश्यक होता है जो इंद्रियों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है और उसके आत्मिक विकास के लिए

आत्म ज्ञान आवश्यक होता है जो योग की क्रिया (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

श्री अरविंद इस सबके लिए तद्नुकूल उचित शिक्षा आवश्यक समझते थे। इनकी दृष्टि से मनुष्य को शिक्षा द्वारा सर्वप्रथम अपने द्रव्य एवं प्राण स्वरूप का ज्ञान करना चाहिए और उसके बाद अतिमानस, आनंद, चित्त और सत् का ज्ञान करना चाहिए। इस सबके लिए ये स्वस्थ शरीर, निर्मल मन और संयमी जीवन आवश्यक समझते थे।

अरविंद सर्वांग योग दर्शन की ज्ञान एवं तर्क मीमांसा

श्री अरविंद के अनुसार भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों तत्वों में मूल तत्व ब्रह्म ही है, इसलिए भौतिक एवं आध्यात्मिक तत्वों के अभेद को जानना ही सच्चा ज्ञान है। प्रयोग की दृष्टि से इन्होंने ज्ञान को दो भागों में बाँटा है-द्रव्यज्ञान और आत्मज्ञान। द्रव्यज्ञान (जगत ज्ञान) को ये साधारण ज्ञान मानते थे और आत्मज्ञान को उच्च ज्ञान। इनकी दृष्टि से वस्तु जगत का ज्ञान ज्ञानेंद्रियों द्वारा और आत्मतत्व का ज्ञान अंत:करण द्वारा होता है। आत्मतत्व के ज्ञान के लिए ये योग की क्रिया (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि) को आवश्यक मानते थे।

अरविंद सर्वांग योग दर्शन की मूल्य एवं आचार मीमांसा

श्री अरविंद ने आरोहण के 7 सोपान बताए हैं-द्रव्य प्राण मानस अतिमानस आनंद चित्त सत्। इनके अनुसार मनुष्य जन्म से ही द्रव्य, प्राण और मानस के सोपानों को पार कर चुका होता है, जन्म के बाद उसे अतिमानस की स्थिति को प्राप्त कर आनंद, चित्त और सत् की प्राप्ति करनी होती है। इनके अनुसार मनुष्य जीवन का अंतिम उद्देश्य आनंद + चित्त + सत् की प्राप्ति है। इसके लिए इन्होंने गीता के कर्म योग एवं ध्यान योग को साधन बताया है जिसमें योगी संसार (कर्मक्षेत्र) से पलायन नहीं करता अपितु सत्-चित्-आनंद में ध्यान लगाकर निष्काम भाव से अपने कर्तव्य का पालन करता है। ऐसे कर्मयोगी एवं ध्यानयोगी के लिए यह आवश्यक है कि उसका शरीर स्वस्थ हो, मन विकार-रहित हो और जीवन संयमी हो। इसके लिए अरविंद ने योग की क्रिया (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) के महत्त्व को स्वीकार किया है। इनके मत से ये यह सब मनुष्य के आचरण के अंग होने चाहिए। श्री अरविंद के अनुसार, मनुष्य जीवन का अंतिम उद्देश्य ईश्वर की प्राप्ति है।

श्री अरविंद का शैक्षिक चिंतन

श्री अरविंद एक दार्शनिक के रूप में अधिक विख्यात हैं, परंतु अपने दार्शनिक सिद्धांतों को मनुष्य जीवन में उतारने के लिए इन्हें एक विशेष प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता अनुभव हुई। उधर राष्ट्रोत्थान के लिए भी तत्कालीन शिक्षा उपयुक्त नहीं थी। इसलिए इन्होंने शिक्षा की एक राष्ट्रीय योजना प्रस्तुत की। इनके शिक्षा संबंधी ये विचार मुख्य रूप से इनकी दो पुस्तकों-'नेशनल सिस्टम ऑफ एजूकेशन' और 'ऑन एजूकेशन' में प्रकट हुए हैं। यहाँ उनका सार संक्षेप में प्रस्तुत है –

शिक्षा का संप्रत्यय

श्री अरविंद का विश्वास था कि मनुष्य द्रव्य और प्राण की अवस्था को पार कर मानस की स्थिति में होता है; जन्म के बाद उसे अतिमानस की अवस्था, उससे आनंद, आनंद से चित्त और चित्त की अवस्था पर पहुँचना होता है। अब यदि हम उसे इस विकास की ओर अग्रसर करना चाहें तो हमें उसे ऐसी शिक्षा देनी होगी कि वह अपने द्रव्य, प्राण एवं मानस स्वरूप को जाने और उससे आगे के स्वरूप एवं उनकी ओर बढ़ने की विधियों को जाने। श्री अरविंद के अनुसार यह सब कार्य शिक्षा द्वारा ही किया जा सकता है, एक ऐसी शिक्षा द्वारा जो मनुष्य का भौतिक, प्राणिक, मानसिक, अंतरात्मिक और आध्यात्मिक विकास करे। ऐसी शिक्षा को ये संपूर्ण शिक्षा (प्दजमहतंस म्कनबंजपवद) कहते थे। इनके शब्दों में शिक्षा मानव के मस्तिष्क और आत्मा की शक्तियों का निर्माण करती है और उसमें ज्ञान, चरित्र और संस्कृति को जागृत करती है'

शिक्षा के उद्देश्य

श्री अरविंद के अनुसार शिक्षा के दो मुख्य कार्य हैं-पहला कार्य है मनुष्य को उसके अपने विकास क्रम (आध्यात्मिक) का स्पष्ट ज्ञान कराना और दूसरा कार्य उसमें सत् तक पहुँचने की शक्ति का विकास करना। श्री अरविंद ने शिक्षा के उद्देश्यों को इसी विकास क्रम में प्रस्तुत किया है।

1. भौतिक विकास का उद्देश्य-इस जगत एवं मानव विकास का प्रथम सोपान द्रव्य (जड़) है। श्री अरविंद शिक्षा द्वारा मनुष्य को सर्वप्रथम पंच महाभूतों से बने इस वस्तु जगत एवं उसके स्वयं के भौतिक स्वरूप के बारे में ज्ञान करा देना चाहते थे और उसे अपने शरीर की रक्षा एवं विकास की क्रियाओं में प्रशिक्षित करा देना चाहते थे। इसे ही दूसरे शब्दों में शारीरिक विकास का उद्देश्य कहते हैं। श्री अरविंद के अनुसार सत्-चित्त-आनंद की प्राप्ति भी स्वस्थ शरीर से ही होती है इसलिए शिक्षा का सर्वप्रथम उद्देश्य शारीरिक विकास होना चाहिए। मनुष्य को अपने द्रव्य स्वरूप की रक्षा के लिए रोटी, कपड़ा और मकान की आवश्यकता होती है। अत: शिक्षा द्वारा उसे किसी व्यवसाय अथवा उद्योग का प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए। इसे ही दूसरे शब्दों में व्यावसायिक विकास कहते हैं। श्री अरविंद यह भी जानते थे कि मनुष्य अपने इस भौतिक जीवन को समाज में रहकर जीता है, इसलिए ये उसके सामाजिक विकास पर भी बल देते थे और इन सबको मनुष्य को भौतिक विकास के अंतर्गत रखते थे।

2. प्राणिक विकास का उद्देश्य-मानव विकास का दूसरा सोपान है प्राण। प्राण का अर्थ उस शक्ति से है जिसके कारण जगत में परिवर्तन होता है। श्री अरविंद के अनुसार शिक्षा का दूसरा उद्देश्य इस प्राण शक्ति का विकास होना चाहिए। इनके अनुसार मनुष्य की प्राण शक्ति को सही दिशा में लगाने के लिए यह आवश्यक है कि उसका नैतिक एवं चारित्रिक विकास किया जाए और उसकी इच्छा शक्ति को दृढ़ किया जाए। यह विकास तभी संभव है जब इंद्रियों को असत् से सत् मार्ग की ओर लगा दिया जाए। अतः इन्द्रियों का प्रशिक्षण शिक्षा का दूसरा उद्देश्य होना चाहिए। इसके लिए ये स्नायु शुद्धि, मानस शुद्धि और चित्त शुद्धि आवश्यक समझते थे।

3. मानसिक विकास का उद्देश्य-मानस अर्थात् मन मनुष्य के विकास क्रम का तीसरा सोपान है। मन हमारी सत्ता का सबसे चंचल भाग है, अतः शिक्षा द्वारा मनुष्य का मानसिक विकास करना चाहिए। श्री अरविंद की शिष्या एवं उत्तराधिकारी श्री माताजी के अनुसार मन की शिक्षा के पाँच अंग होते हैं-एकाग्रता की शक्ति को जागृत करना, मन की व्यापकता एवं समृद्धता बढ़ाना, उच्चतम लक्ष्य की ओर समस्त विचारों को संगठित करना, विचारों को संयमित करना तथा अनिष्ट विचारों का त्याग करना और मानसिक स्थिरता का विकास करना। इस सबके लिए श्री अरविंद योग की क्रिया द्वारा मनुष्य की कल्पना, स्मृति, चिंतन, तर्क और निर्णय की शक्तियों को बढ़ाने पर बल देते थे।

4. अंतरात्मिक विकास का उद्देश्य-अतिमानस अर्थात् मनुष्य का अंत:करण मानव विकास का चौथा सोपान है। श्री अरविंद ने इस अंत:करण के चार स्तर बताए हैं-चित्, बुद्धि, मन और अंतर्ज्ञान। श्री अरविंद ने अनुभव किया था कि इस स्तर पर पहुँचकर मनुष्य बिना ज्ञानेंद्रियों का प्रयोग किए सब कुछ देख-समझ लेता है। सत् का साक्षात्कार तो होता ही इस अंत:करण से है, अतः शिक्षा द्वारा इस अंत:करण का विकास किया जाना चाहिए। इस विकास के लिए श्री अरविंद ने योग विधि को आवश्यक माना है।

5. आध्यात्मिक विकास का उद्देश्य-मानव विकास के अंतिम तीन सोपान हैं-आनंद, चित्त और सत्। श्री अरविंद के अनुसार आनंद वह स्थिति है जिसमें मनुष्य सुख-दु:ख की अनुभूति ही नहीं करता है: चित्त वह चेतना शक्ति है जिससे मनुष्य अपने, जगत के और सत् के स्वरूप को जानता है और सत् शुद्ध अस्तित्व का नाम है। सत् केवल ईश्वर को प्राप्त है इसलिए सत् ही ईश्वर और ईश्वर ही सत् है। ये तीनों आध्यात्मिक स्तर हैं। इन स्तरों पर पहुँचने के लिए श्री अरविंद ने कर्म योग एवं ध्यान योग को साधन बताया है और इन दोनों मार्गों पर चलने के लिए मनुष्य के लिए योग क्रिया (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) को आवश्यक बताया है। इनके अनुसार यह शिक्षा का अंतिम उद्देश्य होना चाहिए।

शिक्षा का पाठ्यचर्या

श्री अरविंद ने शिक्षा के पाँच उद्देश्य-भौतिक, प्राणिक, मानसिक, अंतरात्मिक और आध्यात्मिक विकास बताए हैं। इनकी दृष्टि से इन सब उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए समन्वित रूप से प्रयास करना होता है और इसके लिए इन्होंने एक विस्तृत एवं समन्वित पाठ्यचर्या प्रस्तुत की है। भौतिक विकास के लिए ये पाश्चात्य विज्ञान एवं तकनीकी को आवश्यक समझते थे इसलिए इन्होंने उसे भी पाठ्यचर्या में स्थान दिया है, परंतु इनका स्पष्टीकरण था कि उससे भी अधिक महत्त्व की वस्तु है हमारी अपनी संस्कृति जो योग की संस्कृति है, उसके अभाव में हम पाश्चात्य भौतिक विज्ञान का दुरुपयोग भी । कर सकते हैं। इनके द्वारा प्रस्तुत पाठ्यचर्या को हम अग्रलिखित रूप में क्रमबद्ध कर सकते हैं –

1. भौतिक विषय-मातृभाषा एवं राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व की भाषाएँ, इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, गणित, विज्ञान, मनोविज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, कृषि उद्योग, वाणिज्य और कला।
2. भौतिक क्रियाएँ-खेल-कूद, व्यायाम, उत्पादन कार्य, शिल्प।
3. आध्यात्मिक विषय वेद, उपनिषद, गीता, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, विभिन्न देशों के धर्म एवं दर्शन।
4. आध्यात्मिक क्रियाएँ-भजन, कीर्तन, ध्यान एवं योग।

परंतु इन सब विषयों का अध्ययन एवं क्रियाओं का प्रशिक्षण एक दिन में नहीं किया जाएगा। श्री अरविंद आश्रम में उसे निम्नलिखित रूप में रखा गया है –

1. प्राथमिक स्तर–मातृभाषा, अंग्रेजी, फ्रेंच, सामान्य विज्ञान, गणित, सामाजिक अध्ययन एवं चित्रकला और खेल-कूद, व्यायाम, बागवानी, भजन एवं कीर्तन।
2. माध्यमिक स्तर-मातृभाषा, अंग्रेजी, फ्रेंच, गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जंतु विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, सामाजिक अध्ययन एवं चित्रकला और खेल-कूद, व्यायाम, बागवानी, कृषि, अन्य शिल्प, भजन, कीर्तन, ध्यान एवं योग।
3. उच्च स्तर-अंग्रेजी साहित्य, फ्रेंच साहित्य, गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान, विज्ञान का इतिहास, सभ्यता का इतिहास, जीवन का विज्ञान, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शन, अंतर्राष्ट्रीय संबंध एवं विश्व एकीकरण और कृषि, अन्य शिल्प, भजन, कीर्तन, ध्यान एवं योग।

शिक्षण विधियाँ

श्री अरविंद विकास सिद्धांत में विश्वास करते थे। इनके अनुसार विकास के सात सोपान होते हैं-द्रव्य प्राण मानस अतिमानस आनंद चित्त सत्। मनुष्य इनमें से तीसरे सोपान पर होता है, उसे अति मानस आनंद चित्त और सत् सोपानों पर चढ़ना शेष रहता है। इनके लिए ये स्वस्थ शरीर निर्मल मन और संयमी जीवन को आवश्यक मानते थे। इस दिशा में बढ़ने के लिए उसे जिस ज्ञान एवं कौशल की आवश्यकता होती है उसके लिए भी ये तीन तत्व आवश्यक होते हैं और सामान्य ज्ञान एवं कौशल प्राप्त करने के लिए भी आवश्यक होते हैं। परंतु शिक्षण विधियों के संबंध में श्री अरविंद के विचार पूर्णरूप से स्पष्ट नहीं है। कहीं तो वे प्राचीन शिक्षा पद्धति के अनुसार क्रमिक विधि अर्थात् एक दो विषयों के अध्ययन के बाद अन्य एक दो विषयों का अध्ययन प्रारंभ करने की बात करते हैं और कहीं बच्चों के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए अनेक विषयों एवं क्रियाओं की शिक्षा एक साथ करने की बात करते हैं। इसी प्रकार एक ओर तो ये बच्चे की शिक्षा का विधान उसकी भौतिक शक्तियों के आधार पर करने की बात करते हैं और दूसरी ओर उसके लिए योग की क्रिया के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। परंतु एक बात अवश्य है और वह यह कि ये प्राचीन विधियों को नया रूप देना चाहते थे। ये उपदेश, प्रवचन, व्याख्यान और अन्य मौखिक विधियों के प्रयोग की स्वीकृति तो देते थे लेकिन इस शर्त के साथ कि किसी भी स्थिति में बच्चों को रटाया नहीं जाएगा अपितु उन्हें ज्ञान को स्वयं के प्रयत्नों से आत्मसात् कराया जाएगा। यह तभी संभव है जब शिक्षण